International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 733-737

हिन्दी साहित्य में गीत की अवधारणा

प्रियंका कुमारी
शोध छात्रा, जूनियर रिसर्च फेलो, बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर, बिहार विश्वविद्यालय, बिहार, भारत।

प्रस्तावना

गीत मनुष्य ही नहीं अपितु प्रकृति का प्राणतत्व है। गीत प्रकृति के कण–कण, रग–रग में व्याप्त है। नदियों का कल–कल कर बहना, पंछियों की चहचहाहट, उनका कलरव, अनेक जन्तुओं का वृन्दगान, झींगूरों का सीं–सीं, हवा की सरसराहट, झरने की झर–झर, मेघ की घनन–घनन, तड़ित की गर्जन, बच्चे की किलकारी, उसका रोना, अनुशासित ढंग से श्वासों का आवागमन आदि सर्वत्र यदि हम अनुभव करें तो गीत ही है। गीत का सीधा सम्बन्ध हृदय से है।

मानव मन सुख–दुख, आशा–निराशा, संयोग–वियोग का सदा अनुभव किया करता है। जब उसके ये भाव मन में नहीं समा पाते तो अभिव्यक्ति के लिए मचल उठते हैं। इस प्रकार गीत हृदय के सहज उच्छलन का ही परिणाम है। कवि भावों की इस सहज अभिव्यक्ति में स्वयं ही गुनगुना उठता है। उसमें गेयता का समावेश स्वयं हो जाता है। भावों का यह आयात ही गीत रूप में अभिव्यक्त होता है और उस स्थिति में व्यक्ति की व्यक्तिनिष्ठ भावनाएँ समष्टिगत हो जाती है।

आदिकवि वाल्मीकि कौंच–वध से अभिभूत होकर ही कह उठे थे

''मा निशाद प्रतिष्ठां त्वगमः शाश्वती समाः।
यत् क्रौंच मिथुनाढ़ेकमवधीः काम मोहितम्।।''

अर्थात् गीत में भावों का वेग होता है। जब कवि के हृदय में भावनाओं का सागर उद्वेलित होने लगता है तब उसकी वाणी स्वतः ही अभिव्यक्ति के लिए मचल उठती है। इस बात का समर्थन पाश्चात्य कवि 'वर्ड्सवर्थ' ने भी किया है–

''सशक्त भावों के सहज में उमड़ने पर ही काव्य का जन्म होता है।''

गीत शोकाकुल हृदय की भी तीव्र अभिव्यक्ति होती है। जैसा कि पाश्चात्य कवि 'शैले' ने कहा है–

''हमारे मधुरतम् अवस्था के सूचक शोकाकुल गीत होते हैं।''

गीत अविनाशी है। यह सृष्टि के प्रारंभ और अंत तक है। गीत का उदय मनुष्य के जन्म के साथ हुआ। जीवन का दूसरा नाम ही गीत है। छन्द है, इसीलिए जीवन में भी लय, रागात्मकता एवं सकारात्मकता है। गीत के सृजन में भी इन तत्वों की आवश्यकता होती है। मनुष्य जिस क्षण गुनगुना कर कुछ आनंदानुभूति करता है एवं जब वह अनुभूति अपने तीव्र–वेग में होती है तो गीत का जन्म होता है।

प्रसिद्ध गीतकार 'सोमनाथ ठाकुर' जी ने गीत के महत्व को स्वीकार करते हुए गीत को कुछ पंक्तियों में इस प्रकार परिभाषित किया है–

''जब हृदय में वेदना कोई उमड़ती है।
आत्मा जब दुःखी होकर आह भरती है।
जब कभी अपना बिछुड़कर दूर जाता है।
दूर जो है जब बहुत वह याद आता है।
गीत है, तब जो हृदय की चीर सहलाये।
गीत वह जो हर किसी की पीर कहलाये।''

गीत काव्य की सबसे प्राचीन विद्या है, क्योंकि माँ सरस्वती के कठिन तपस्या के फलस्वरूप बह्मा द्वारा वरदान में प्राप्त पुत्र 'काव्यपुरूष' के अवतरण पर मानव मन में लयबद्ध एवं विषयानुरूप गीत का अविर्भाव हुआ। गीत मनुष्य मात्र की भाषा है। महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'गीतिका' की भूमिका में कहा है– ''गीत सृष्टि शाश्वत है। समस्त शब्दों का मूल कारण ध्वनिमय ओंकार है। इसी निःशब्द संगीत से स्वर सप्तकों की भी सृष्टि हुई। समस्त विश्व स्वर का पूँजीभूत रूप है।''

डॉ0 लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' के अनुसार– ''गीत की परंपरा अति प्राचीन है अर्थात् वेदों से भी पहले की।''[1] वेद की ऋचाएँ एक प्रकार से गीत ही हैं। वेदों के मंत्र भावमय संगीत से परिपूर्ण है। ऋग्वेद की प्रार्थनाएँ गीतों के माध्यम से ही प्रकट होती है।

संस्कृत काल में गीत की परंपरा के इतिहास का आरंभ कालिदास की कृति 'मेघदूत' से होती है। संस्कृत में गणित की पुस्तक, 'लीलावती' (भास्कराचार्य) गीत शैली में ही लिखी गयी। 'वाल्मीकि रामायण' के बाद संगीत का लौकिकीकरण हुआ, जिसका चरम विकास'महाभारत' में मिलता है। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में नाटकों के साथ संगीत का भी विकास किया, जो आधुनिककाल में 'जयशंकर प्रसाद' के नाटकों में खड़ीबोली के गीतों के रूप में प्रवाहित हो रहा है।

उदाहरणस्वरूप पंक्तियाँ

''यौवन तेरी चंचल छाया
इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ जो रस तू है लाया
मेरे प्याले में मद बनकर कब तू छली समाया
जीवन–वंशी के छिद्रों में स्वर बनकर लहराया
पल भर रूकने वाले! कह तू पथिक! कहाँ से आया।''
(ध्रुवस्वामिनी' नाटक द्वितीय अंक–जयशंकर प्रसाद)

तदुपरान्त बौद्ध–साहित्य 'धम्मपद' में भी गीत है। 'धम्मपद' नामकरण का कारण भी संभवतः यही है कि इसके छंद गेय है

''मनोपुब्बगमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।
मनसा चे पदुट्ठेन मासति करोति वा।
ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं वा वहतो पदं।।''

इसके बाद थेर एवं थेरी गाथाओं में भी गीतात्मकता मिलती है; जैसे

''यथा अब्मानि वेरम्मा वातो धुवति पावुसे।
सञा में अभिकीरन्ति विवेक पहि सञुता।।''

पालि–प्राकृत भाषा के काव्यगीतों की उपेक्षा के कारण लोक गीतों के आविर्भाव ने ही हिन्दी गीतिकाव्य की पृष्ठभूमि तैयार की। इस प्रकार के गीत 'सातवाहन'–कृत 'गाथासप्तशती' एवं गोवर्धनाचार्य–कृत 'आर्यासप्तशती' में मिलते हैं। तत्पश्चात् अपभ्रंश काल में योगमार्गी बौद्ध–सिद्धों की रचनाओं में गीत मिलता है, जो वस्तुतः हिन्दी कविता के जन्मदाता भी हैं। 12वीं शताब्दी में 'जयदेव'–कृत 'गीतगोविन्द' नामक कृति ने भारतीय गीतिकाव्य में क्रांति ला दी। 'ओमप्रकाश अग्रवाल का मानना है– ''वास्तव में जयदेव को ही स्वतंत्र गीतिकाव्य का जन्मदाता मानना चाहिए, क्योंकि उन्होंने संगीत की उत्कृष्ट मर्यादा पर राग–रागनियों से पूर्ण सुकुमार भाव–भाषा में राधा–कृष्ण के प्रेम में तन्मय होकर गीतों की परम–पावन धारा प्रवाहित की। जयदेव के गीतों में पद लालित्य, सौन्दर्य–भावना और रस की जैसी व्यंजना है, अन्यत्र कम ही मिलेगी।''[2] 'गीतगोविन्द' का हिन्दी गीतिकाव्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा विशेषकर विद्यापति साथ ही सूरदास, रसखान, तुलसीदास एवं मीरा आदि पर भी।

आदिकालीन वीरगाथात्मक रचनाएँ गीत प्रधान है, जो वीरों को प्रोत्साहित करने हेतु लिखी जाती थी, क्योंकि हृदय में उत्तेजना लाने हेतु गीत प्रबल माध्यम होते हैं। भक्तिकाल में भी गीत अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रहा। भक्तिकालीन जितनी भी रचनाएँ हैं, चाहे प्रबंधकाव्य हो या कोई अन्य काव्य मुख्यतः गीतबद्ध ही है। रीतिकाल में भी कुछ कवियों द्वारा उच्च कोटि के गीत लिखे गये; जैसे घनानंद देव, मतिराम एवं सेनापति आदि। घनानंद में पूर्णतः आत्मपर्यवसित गीतात्मक प्रतिभा थी। ये मुगल बादशाह मुहम्मद शाह रंगीला' के दरबार में 'सुजान' (घनानंद की प्रेमिका) को संगीत–शिक्षा देते थे।

उदाहरणः–

''रावरे रूप की रीति अनूप, नयो–नयो लागत ज्यों–ज्यों निहारिये।
त्यों इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहू नहिं आनि तिहारिये।।''

(घनानंद)

आधुनिक काल भी संगीत समृद्ध है। 'नरेन्द्र शर्मा जी का मानना है– ''गीत हमारी संस्कृति को अत्यन्त प्रिय रहा है।''[3]

हिन्दी में गीत तत्व सर्वप्रथम अपभ्रंश के सिद्ध कवियों में देखने को मिलता है। सिद्ध कवियों ने भाषा में गीतों का प्रणयन अपने सिद्धान्तों के प्रचार हेतु किया। इनके गीतों को चर्यापदों के रूप में देखा जाता है, जो इस प्रकार है–

''तिअद्डा चापि जोइन दे अंकवाली।
कमल कुलिरा घोंटि करहुँ बिप्राली।।
जोइने तई बिनु खनहिं न जीवम्।
तो मुँह कुम्बि कमल रस पीवम्।।''

आदिकालीन समाज राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक आदि विभिन्न दृष्टियों से अशांत था। अतः साहित्य सृजनानुकूल परिस्थिति के अभाव में गीत विधा का विकास भी अधिक नहीं हो पाया। इस युग में चारणों–भाटों द्वारा कुछ काव्य रचनाएँ हुई, जिनमें आश्रयदाताओं के ही युद्ध, विवाह, आखेट, विलासप्रिय जीवन आदि का वर्णन मिलता है। इस काल में 'बीसलदेवरासो' (नरपतिनाल्ह) एवं 'आल्हाखण्ड' दो ही गीतपरक कृतियाँ मिलती है, जिसमें जगनिक–कृत 'आल्हाखण्ड' की रचना केवल गायन के लिए ही हुई थी।

उदाहरण

''मुर्चन–मुर्चन नचै बंदुला उदल कहैं पुकारि–पुकारि,
भागि न जैयो कोऊ मोहरा ते यारों रखियो धर्म हमार''

(आल्हाखण्ड)

इस काल में 'गोरखनाथ' एवं अमीर खुसरो ने मुक्तक गीतों की रचना की।

उदाहरण

''अवधू रहिया हाटे वाटे रूप विरष की छाया।
तजिया काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया।।''

(गोरखनाथ)

आदिकाल में मैथिल कोकिल विद्यापति के गीतों का प्रमुख स्थान है। इनके गीतों में अनुभूति की तीव्रता एवं भावों का अम्बुधि लहराता है, जो इस प्रकार है–

''कुंज भवन सँय निकसलि रे
रोकल गिरधारी।
एकहि नगर वस माधव रे
जनि कर बाटमारी।
छाड़ कन्हैया मोर आँचर रे
फाटत नव सारी।''

इनके मधुर गीतों का प्रभाव संपूर्ण पूर्वी प्रदेश पर पड़ा। बंगाल के कवियों ने, चण्डीदास तक ने इन गीतों को आदर्श रस में ग्रहण किया और उनकी भाषा तक को स्वीकार किया।

विद्यापति के प्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ गीतकार होने की पुष्टि हिन्दी के चुनिन्दे आलोचकों के वक्तव्यों से होती है–

'बच्चन' ने लिखा है– ''साहित्य की कोटि में आनेवाले हिन्दी गीतों के प्रथम रचयिता विद्यापति ही हैं।''[4]

श्री विश्वंभर 'मानव' का वक्तव्य है– ''हमारी भाषा की अमराई में सबसे पहला स्वर संधान मैथिल कोकिल विद्यापति ने किया है– विद्यापति के उपरांत कबीर ने अपनी खंजरी संभाली, फिर सूर तुलसी, मीरा।''[5]

'नंददुलारे वाजपेयी' ने कहा है– ''हिन्दी–साहित्य में कबीर से लेकर विद्यापति, सूर, तुलसी और मीरा की गीत रचना हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।''[6]

इस प्रकार हिन्दी में गीत का आरम्भकर्त्ता विद्यापति को ही माना गया है उसके बाद कबीर आदि का नाम आता है।

हिन्दी–साहित्य का भक्तिकाल हिन्दी–साहित्य का ही स्वर्णयुग नहीं है, अपितु गीत की दृष्टि से भी समृद्ध है। इस काल में गीत के दो रूप दिखाई देते हैं– प्रथम निर्गुणोपासक कवियों के गीत एवं दूसरा सगुणोपासक कवियों के गीत। कबीर, नानक, धर्मदास, दादू आदि

निर्गुणोपासक एवं सूरदास, तुलसीदास एवं मीराबाई सगुणोपासक कवि हैं। इन सभी ने गीतों की रचना की। चूँकि गीतों में अत्यधिक स्मरणीय क्षमता होती है एवं मनुष्य स्वभावतः गेय पदों को ही महत्व देता है। गीत हृदय से निकलता है और इसका मानसपटल पर चिर समय तक प्रभाव रहता है। सम्भवतः इसी कारण भक्तिकालीन कवियों ने तत्कालीन विदेशी आक्रमणों से भयभीत, दिग्भ्रमित, पतनशील एवं अव्यवस्थित ढाँचे वाले भारतीय समाज को उचित मार्ग पर लाने, अपने समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संजोने एवं सांस्कृतिक मूल्यों को बचाने के साथ ही उन्हें पुनः स्थापित करने हेतु अपने प्रगतिशील विचारों उपदेशों को उन तक पहुँचाने का माध्यम गीतों को ही बनाया।

हिन्दी में शुद्ध गीतों की रचना मध्यकाल में संत कवियों की परंपरा से मिलती है एवं संत कवियों की परंपरा कबीर से मानी जाती है। कबीर के गीतों में आध्यात्मिकता का रूप द्रष्टव्य है, जिसमें आत्मा–परमात्मा के मिलन–विरह की दशा को रहस्यात्मक रूप में प्रकट किया गया है–

''जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी,
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तथ कथौ गियानी।।''

कबीर के गीतो के बारे में निराला जी ने लिखा है– ''हिन्दी में जो प्रचलित गीत हैं, उनमें कबीर के गीत शायद सबसे प्राचीन हैं।''[7]

मध्यकालीन सगुणोपासक कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का स्थान महत्वपूर्ण है। सूरदास ने राधा–कृष्ण के बाल–यौवन–प्रेम वर्णन, गोपियों का विरह वर्णन, यमुना–यशगान, विनय–पद, गुरू–महिमा वर्णन आदि विविध विषयों से सम्बन्धित पदों को गीतबद्ध कर गेय रूप में प्रस्तुत किया। इन्होंने सुमधुर गेय पदों की रचना की, जिसकी एक झाँकी प्रस्तुत है–

''जसुमति मन अभिलाशा करैः
कब मेरे लाल घुटुरूवनि रेंगे, कब धरती पग द्वैक धरे।
कब द्वै दाँत दूत कै देखों, कब तोतरे मुख वचन भरै।।''

सूरदास के अतिरिक्त नंददास, कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी ने भी कृष्णभक्तिपरक गेय पदों की रचना की।

मध्यकालीन सगुणोपासक रामभक्त कवियों में तुलसीदास जी का स्थान सर्वोच्च है। अवधी के प्रतिष्ठापक होने के बावजूद इन्होंने गीतों के लिए ब्रजभाषा को ही अपनाया। यह सूरदास का ही प्रभाव है, जो आधुनिककाल तक दिखाई पड़ता है, क्योंकि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, सत्यनारायण 'कविरत्न' एवं श्रीधर पाठक आदि ने भी ब्रजभाषा में ही पद गायन की। तुलसीदास जी ने 'रामगीतावली' 'कृष्णगीतावली', 'विनय पत्रिका', में सुन्दर गेय पदों की रचना की है, जिनमें अनुभूतियों की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति चरम सीमा पर है–

''केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र हरि, समुझि मनहिं मन रहिये।।''
(विनयपत्रिका)

रीतिकालीन कवि राज्याश्रित थे। उस काल में सुरा एवं सुन्दरी का बोलबाला था। फलतः कवि श्रृंगारिक वर्णनों में ही उलझ कर रह गये एवं गीत परंपरा का स्त्रोत उपेक्षित रहा। फिर भी इस काल में घनानंद, देव, मतिराम, सेनापति, नागरीदास, विश्वनाथ सिंह (रींवा के राजा), अलबेलि, अलि चाची, हितवृंदावनदास, भगवत रसिक आदि ने शुद्ध गीतों की रचना की। इसके अतिरिक्त सुन्दर कुँवरि, सहजोबाई, दयाबाई, प्रतापबाला, रसिक बिहारी, जुगलप्रिया एवं प्रतापकुँवरी आदि प्रमुख स्त्रियाँ, जो रानी थीं साथ ही भक्त एवं कवयित्री भी थीं।

आधुनिककाल का प्रारम्भ भारतेन्दु जी से माना जाता है। भारतेन्दु ने रीतिकाल में उपेक्षित भक्तिकाल की समृद्ध गीत–परंपरा को पुनः जीवित किया और ब्रजभाषा में राधा–कृष्ण की प्रेमानुभूति सम्बन्धी गीतों की रचना पद शैली में की।

उदाहरण

''प्रभु रच्छहु दयाल महरानी।
बहु दिन जिए प्रजा–सुखदानी।
हे प्रभु रच्छहु श्री महारानी।
सब दिसि में तिनकी जय होई।
रहै प्रसन्न सकल भय खोई।''
(जातीय संगीत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

इसके अलावा 'ब्रजबिहारी कृष्ण और 'वियोगी हरि' ने ब्रजभाषा में राधा–कृष्ण की अनन्य भक्ति में तन्मय होकर पदशैली में गीतों की रचना की।

द्विवेदी–युग में श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट, मुकुटधर पाण्डेय, माधव शुक्ल आदि ने गीतों की रचना की। श्रीधर पाठक ने ब्रजभाषा में 'भ्रमरगीत नाम के मधुर पदों में प्रेम और सुधार को गाया है, वही दूसरी ओर खड़ीबोली में भारत देश के गीतों की उत्कृष्ट रचना करके प्राचीन परंपरा को त्यागने का प्रयास किया। 'मैथिलीशरण गुप्त' ने ब्रजभाषा को न अपनाकर खड़ीबोली में 'भारतभारती' की रचना की। उनके गीत मुक्तक गीतों की शुद्ध श्रेणी में आते हैं। ये गीत विशेषकर 'साकेत' ओर 'यशोधरा' में ही उपलब्ध है। इनके गीतों में प्रकृति की सूक्ष्म व्यंजना और मानसिक भावों का अपूर्व सामंजस्य है, जिसका विकास प्रसाद–युग में हुआ।[8]

''नयन उन्हे है निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते?
गये तरस ही बाते!
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।''
('यशोधरा'– मैथिलीशरण गुप्त)

छायावाद द्विवेदी–युगीन उपयोगितावाद की प्रतिक्रियास्वरूप आया। फलतः प्राचीनता बनाम नूतनता का संघर्ष प्रारम्भ हुआ तथा छायावादी कवि प्राचीन काव्यशास्त्रीय परंपराओं को छिन्न–भिन्न करते हुए एक नूतन अनुभूति लेकर काव्य क्षेत्र में आगे बढ़े। इस प्रकार प्रसाद, पन्त, निराला एवं महादेवी वर्मा आदि छायावादी कवियों ने अपनी स्वयं की प्रेमानुभूति को गीत रूपों में वाणी दी। 'निराला जी' के विचार से – ''खड़ीबोली में नए गीतों के भी प्रथम सृष्टिकर्त्ता प्रसाद जी हैं। उनके नाट्कों में अनेक प्रकार के नए गीत हैं।'' [9]

प्रसाद के नाटकों के गीतों में प्रकृति चित्रण, प्रेमानुभूति एवं मानसिक राग–विरागों की लयकारी व्यंजना है। 'जयप्रकाश भाटी के मत से–''प्रसाद के गीतों में चित्रात्मकता, मधुरता, तन्मयता और रागात्मकता अपने पूर्ण यौवन पर आ गई।''[10]

उदाहरण

''पतझड़ या झाड़ खड़े थे, सूखे से फुलवारी में।
किसलय दल कुसुम विछाकर, आये तुम इस क्यारी में।।''

'निराला जी' ने संगीत में मौलिक प्रयोग करते हुए पाश्चात्य एवं पौर्वात्य प्रणालियों के गीत का सामंजस्य किया है। इनके गीतों में सुकुमार मृदुल भाषा के साथ ओजस्विनी गंभीर भाषा का रूप दिखाई देता है। इन्होंने मुक्त छन्द में गीतों की रचना की है–

''मौन रही हार।
प्रिय पथ पर चलती सब कहते श्रृंगार।।
कण–कण कंकण, मृदु किण–किण–रण किंकिणी।
रणन रणन नूपुर उर लाज और रंकिनी।।''

प्रकृति सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य में भी संगीत की लहरी प्रवाहित होती है, जो इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

''कोयल का वह कोमल बोल
मधुकर की वीणा अनमोल
कह, तब तेरे ही प्रिय स्वर से कैसे भर लूँ सजनि! श्रवण?''

'मीराबाई' की भाँति 'महादेवी वर्मा' के गीतों में भी वेदना है, एक टीस है। ये कभी अपनी पीड़ा में प्रियतम को ढूँढती हैं तो कभी प्रियतम में पीड़ा।

उदाहरण–

''विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात!
वेदना में जन्म करूणा में मिला आवास,
अश्रु चुनता दिव्य इसका; अश्रु गिनती रात;
जीवन विरह का जलजात!''

इसी प्रकार माखन लाल चतुर्वेदी एवं बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अपनी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति गीतों के माध्यम से की।

उदाहरण–

''चरण चलें, ईमान अचल हो!
जब बलि रक्त–बिन्दु–निधि माँगे
पीछे पलक, शीश कर आगे
सौ–सौ युग अँगुली पर जागे
चुम्बन सूली को अनुरागे
जय काश्मीर हमारा बल हो।''

(माखनलाल चतुर्वेदी)

छायावादोत्तर काल में डॉ0 हरिवंशराय बच्चन का नाम प्रथम गीतकार कवि के रस में आता है, जिन्होंने अपने जीवन के घातों–प्रतिघातों को गीत रूप देकर जनमानस को अपना सहभागी बनाया। इनकी गीत परंपरा की प्रमुख कृतियाँ मधुशाला, मधुबाला, मधुकलश, निशा–निमंत्रण, एकांत–संगीत, मिलनयामिनी, आकुल अंतर, सतरंगिनी, प्रणयपत्रिका, आरती और अंगारे आदि प्रमुख है–

उदाहरण

''हृदय हमारा करके गदगद भाव अनेक उठाता है,
उच्च हमारा होकर झंडा जब फर–फर फहराता है।'' [11]

हमारे भारतीय काव्यशास्त्र के लक्षण भी गीतों के माध्यम से ही प्रस्तुत किये गये हैं; जैसे– आचार्य 'केशवदास' ने काव्य का लक्षण देते हुए लिखा है–

''जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न विराजहीं कविता, बनिता मित्र।।''

इसी प्रकार कवि 'देव' ने 'शब्दरसायन' में काव्य का लक्षण गीत शैली में ही दिया है–

''अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लच्छना लीन।
अधम व्यंजना रस कुटिल, उलटी कहत नवीन।।''

हिन्दी ही नहीं उर्दू साहित्य में भी गीत की प्रधानता है। वह गीत हो या रूबाईयाँ; जैसे–

''अजीजम पचास हाथ का एक सजर।
जमीं पर गिरा जड़ से बीस हाथ पर।
मसाहत अगर जानते हैं जनाब।
तो बाकी ऊँचाई का दे दें जवाब।''

समकालीन हिन्दी साहित्य में भी गीत परंपरा प्रवहमान है भले ही समयानुसार गीत की संरचना में परिवर्तन आए हैं, जिसे 'दिनेश सिंह' जी की पंक्तियों में देखा जा सकता है, जो इस प्रकार है–

''वैश्विक फलक पर
गीत की संवेदना है अनमनी
तुम लौट जाओ
प्यार के संसार में मायाजनी
इस अगम गति की चाल में
भूचाल की है रागिनी!''

समकालीन–युग के कुछ प्रमुख गीतकार 'यश मालवीय' कुँवर बेचैन, रवीन्द्र भ्रमर, कुमार रवीन्द्र माहेश्वर, एवं अशोक अंजुम आदि है, जिन्होंने समकालीन गीत के विपुल रचना–संसार को समृद्ध किया है। 'यश मालवीय' के गीत की एक पंक्ति इस प्रकार है–

''इक दफा अवचेतन में कोई
हौले हल्के से आया था
अब सबकुछ उसका अपना है
ये चेतन भी अवचेतन भी।''

निष्कर्षत

हिन्दी साहित्य जगत में गीतों की एक दीर्घ परंपरा रही है। गीतों ने एक लम्बा मार्ग तय किया, जिसमें गीत भक्ति, प्रेम, समर्पण एवं प्रकृति के सहयात्री रहे। हिन्दी में लोक व पारंपरिक गीत परंपरा की अजस्र धारा निरंतर बहती रही और आज भी अगीत, नवगीत के रूप में सजीव एवं प्रवहमान है। लोकजीवन नैसर्गिक रूप में गीतों में ही सुरभित रहता है। अतः जब तक लोक एवं लोकजीवन रहेगा, गीतों में इसकी धारा प्रवाहित होती रहेगी एवं सरस कविताओं की बात होगी तो उसमें गीतो का स्थान सर्वोपरि होगा।

सन्दर्भ

1. गीतिकाव्य का विकास– लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' पृष्ठ 291
2. ओकप्रकाश अग्रवाल– हिन्दी गीतिकाव्य पृ0 271
3. नरेन्द्र शर्मा– गीत में संगीतात्मकता (गीत लेख) पृ0 201
4. बच्चन– नए–पुराने झरोखे पृ0 1261
5. विश्वंभर 'मानव' – महादेवी कलापक्ष (सं0 इन्द्रनाथ मदान) पृ0 771
6. डॉ0 जीवन प्रकाश जोगी– आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य विषय और शिल्प पृ0 211
7. निराला गीतिका (भूमिका से) पृ0 03
8. सच्चिदानंद तिवारी– आधुनिक गीतिकाव्य प्रथम, पृ0 281
9. निराला गीतिका पृ0 14
10. जयप्रकाश भाटी– बच्चन का साहित्य : काव्य और शिल्प पृ0 2661
11. बच्चन रचनावली भाग–3 प्रारंभिक रचनाएँ 1 झंडा पृ0 459
12. डॉ0 शिवप्रसाद सिंह – विद्यापति।
13. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास– रामस्वरूप चतुर्वेदी।